वर्ष : 6 • अंक : 23 • जनवरी-मार्च 2020 • ISSN 2347-6605

वाक् सुधा

VAAK SUDHA

(अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका)

(International Peer Reviewed Referred Journal of Multidisciplinary Research in Multi-Language)

विशेष सूचना :

विचार की प्रतिबद्धता में राष्ट्रहित सर्वोपरि है।

संरक्षक :

प्रो. दलवीर सिंह चौहान

पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

रूपेश कुमार चौहान

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं सम्पादक

द्वारा 47, ब्लॉक ए-3, गली नं. 5, धर्मपुरा एक्सटेंशन, दिल्ली-43 से प्रकाशित एवं डॉल्फिन प्रिंटोग्राफिक्स, 4ई/7, पाबला बिल्डिंग, झंडेवालान् एक्सटेंशन, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

दूरभाष संख्या-09555222747, 09540468787, 0991158532, 09266319639

Email: vaaksudha@gmail.com • Website : www.vaaksudha.com

अज्ञेय : व्यक्तित्व की पहचान

डॉ. शंकर कुमार

अज्ञेय का रचनाकार व्यक्तित्व बहुआयामी है। आश्चर्यजनक रूप से, ऐसा कोई भी फलक नहीं था जो दूसरे से इंच भर भी कम हों। चाहे वे कविता लिखें या कहानी, उपन्यास हो या निबन्ध संग्रह, यात्रावृत्त हो या फिर डायरी सभी साहित्य की विधाओं को सम्पन्न और समर्थ ही बनाते दिखते हैं। उनका व्यक्तित्व भी रचनाकार व्यक्तित्व के समान ही धारदार था। क्रांतिकारी और घुमक्कड़ तो वे थे ही, हरफनमौला भी वे गजब के थे। लेखन और चित्रांकन से लेकर माली, बढ़ई, रसोइये का काम भी वे बढ़िया ढंग से और खुशी-खुशी कर सकते थे। शानोशौकत से रहना उन्हें पसन्द था, पर ऐसी सुविधा न रहने पर वे मस्तमौला-फक्कड़ की तरह ही मजे में रह सकते थे। उनकी पसंद और नापसंद दोनों प्रबल थी।

ऐसे व्यक्तित्व का तत्कालीन वातावरण, राजनीतिक रूप से अपने उठान पर था। देश के अन्दर पराधीनता के विरुद्ध संघर्ष अधिक आक्रामक हो उठा था। अनेक वर्षों के गांधीवादी अहिंसात्मक प्रतीक सत्याग्रहों की लम्बी शृंखला के बाद पूरे देश की चेतना एक ऐसे बिन्दु पर पहुंच चुकी थी, जो अंग्रेज़ों को और अधिक बर्दाश्त करने को तैयार नहीं थी। छिटपुट क्रांतिकारी विस्फोटों के स्थान पूरा देश सामूहिक विस्फोट के लिए पक चुका था। गांधी और सुभाष के टकरावों के बावजूद दोनों विरोधी विचारधाराओं ने तत्कालीन समाज को जगाने और जुझारू बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। अगस्त 1942 में नेताओं की गिरफ्तारी के बाद जो देश भर में क्रांति का ज्वार दिखाई पड़ा, उससे भी इस बात का सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि राष्ट्रीय संकल्प उस समय किस ऊंचाई पर पहुंचा हुआ था। साहित्य के क्षेत्र में अज्ञेय जैसे विराट व्यक्तित्व का जन्म ऐसे युग की आवश्यकता बन गई थी।

अज्ञेय के प्रारंभिक जीवन के विकास पर दृष्टि डालने से उनके आगे बनने वाले व्यक्तित्व की जानकारी हमें मिलती है। सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म फाल्गुन शुक्ल सप्तमी, संवत् 1967, यानि अंग्रेज़ी तारीख के मुताबिक 7 मार्च 1911 को उत्तर प्रदेश के देवरिया जनपद के कसया नामक स्थान में एक पुरातत्व खुदाई शिविर में हुआ। शायद इसलिए (और परंपरागत मिथकों के अनुसार भी) अज्ञेय जीवन भर यायावर बने रहे। वे पंजाब में जालंधर के निकट करतारपुर के भणोत सारस्वत ब्राह्मण कुल के थे। उनके पिता पं. हीरानंद शास्त्री भारत सरकार के पुरातत्व विभाग में एक उच्च अधिकारी थे। वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे और स्वाभिमानी एवं कठोर अनुशासनप्रिय भी। अज्ञेय जी का पुकारू नाम 'सच्चा' था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा घर में ही हुई। संस्कृत पंडित से 'रघुवंश', 'रामायण', 'हितोपदेश', पढ़े, फारसी मौलवी से 'सादी' और अमरीकी पादरी से अंग्रेषी पढ़ी। बचपन के आरंभिक वर्ष लखनऊ, श्रीनगर और जम्मू में बीते। सन् 1919 में पिता के साथ नालन्दा आये और वहां से पटना। हिन्दी साधुभाषा हिन्दी का संस्कार पिता से ही ग्रहण किया जो उत्तरोत्तर सहज सिद्ध होता गया। अंग्रेषी पक्की होते ही अंग्रेज़ और उसकी अंग्रेज़ी के प्रति मन में विद्रोह जगना स्वाभाविक ही था। 1921 से 1925 तक उटकमण्ड में सच्चिदानन्द को एक मठ के

वर्ष : 6 • अंक : 21 • जुलाई-सितम्बर 2019 • ISSN 2347-6605

वाक् सुधा

VAAK SUDHA

(अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका)

(A Scholarly Peer Reviewed Journal)

विशेष सूचना :

विचार की प्रतिबद्धता में राष्ट्रहित सर्वोपरि है।

संरक्षक :

प्रो. दलवीर सिंह चौहान

पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

रूपेश कुमार चौहान

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं सम्पादक

द्वारा 47, ब्लॉक ए-3, गली नं. 5, धर्मपुरा एक्सटेंशन, दिल्ली-43 से प्रकाशित एवं डॉल्फिन प्रिंटोग्राफिक्स, 4ई/7, पाबला बिल्डिंग, झंडेवालान् एक्सटेंशन, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

दूरभाष संख्या-09555222747, 09540468787, 0991158532, 09266319639

Email: vaaksudha@gmail.com • Website : www.vaaksudha.com

शोध-पत्र

डॉ. शंकर कुमार

अकेलापन : अवधारणा और स्वरूप

आधुनिकीकरण के प्रभाव के फलस्वरूप सम्पूर्ण मनुष्य के परिवेश में बदलाव नपर आता है। इसी बदलाव से मनुष्य के अकेलेपन की अवधारणा जन्म लेती है। आधुनिकता के दबाव से एक तरफ मनुष्य का अपने अतीत से अलगाव होता है तो दूसरी ओर अपने इतिहास से। अपने अतीत तथा इतिहास से, समाज और दर्शन से विच्छेद मनुष्य को हाड़-मांस का वास्तविक प्राणी न रखकर मात्र निरपेक्ष एवं अमूर्त मनुष्य बना देता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य में यही भाव पैदा होता है कि इतिहास नहीं है, दार्शनिक विवेक नहीं है। समाज की चेतना नहीं है और जो कुछ यथावत है वही शाश्वत है। स्वाभाविक है, तथा उसकी स्थायी नियति है। यहीं से मनुष्य की समस्याओं की शुरुआत होती है जो उसके व्यक्तित्व को द्वंद्व में ढाल देती है। उसे जिन्दगी एक बेमानी चीज लगने लगती है तथा हर प्रकार की सोद्देश्य क्रियाशीलता संदिग्ध लगने लगती है तथा हर प्रकार की सोद्देश्य क्रियाशीलता संदिग्ध लगने लगती है। आज सामाजिक और राजनीतिक जीवन में जो अराजकता और स्वार्थता छाई है और अपने व्यक्तिगत जीवन में उन्होंने जो कटुताएं झेली हैं, उन सबके अनुभव ने उन्हें जैसे धकेलकर आत्मसीमित कर दिया है। आमतौर पर संवेदनशील व्यक्ति आज अपने को समाज में बेगाना और अजनबी महसूस करता है। इस अजनबीपन और अलगाव का भाव-बोध भीड़ में होकर भी उससे तटस्थ, भिन्न और विरक्त महसूस करना - उसके मन में एक टीस, एक कचोट, एक दर्द भर देता है, जिससे छुटकारा पाने का उपाय नज़र नहीं आता। आधुनिक समाज में मनुष्य के संत्रास के पीछे मुख्य रूप से तीन कारण थे - पूंजी, संगठन तथा युद्ध। इन्हीं तीनों ने 'आत्म-परायापन' को जन्म दिया।

आदिकाल से मनुष्य अलगाव और अजनबीपन की समस्या से जूझता आया है, यद्यपि इस शब्द का प्रयोग संभवत: पहली बार जर्मन दार्शनिक हीगल ने किया था। हीगल का कहना था कि "मनुष्य का सर्वोच्च लक्ष्य 'स्वतंत्रता' है, जिससे उसे आत्म-निर्णय की स्वतंत्रता हो और वह अपने 'तत्व' का स्वामी हो और अपना 'स्व' पुन: प्राप्त हो जाए।"[1] हीगल ने 'आत्म' के अंतर्गत अहं और द्वंद्व, विषय और विषयि' निर्माता और निर्मिति के अद्वैत को ही 'स्वतंत्रता' बताया है। इस स्वतंत्रता की स्थिति में मनुष्य अहं एवं द्वंद्व दोनों का अधीश्वर होगा। लेकिन हीगल ने बताया है कि मनुष्य अपनी तात्विकता से अलग नहीं है। यह अलगाव दो कारणों से है : 'परायापन' तथा 'आवश्यकता'। यहाँ परायापन अहं-इदं द्वैत है तथा आवश्यकता प्रकृति का आश्रय तथा प्रकृति के बंधन हैं। विज्ञान के विकास के द्वारा मनुष्य प्रकृति का स्वामी बन पाएगा और आवश्यकताओं पर विजय हासिल कर लेगा। लेकिन विषयी और विषय, कर्त्ता और वस्तु की भिन्नता बुनियादी है जिस पर काबू पाना संभव नहीं। इसलिए पूर्ण स्वतंत्रता असंभव है। अत: आत्म-निर्णायक होना मनुष्य के बूते के बाहर है।

दार्शनिक प्योरबाख का मानना है कि 'अलगाव' की स्थिति का मूल स्रोत धार्मिक अंधविश्वासों और जड़-पूजन की प्रवृत्तियों में है। उनके अनुसार मनुष्य बंधनग्रस्त इसलिए है कि वह अपनी आकांक्षा, चेतना और संवेदना के

Refereed Journal • ISSN : 2347-6605

Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
Volume-13, Issue-2, September-2019
www.researchguru.net

मीडिया और संस्कृति

डॉ. तेजनारायण ओझा
सीनियर फैकल्टी महाराजा अग्रसेन कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय

सार

संस्कृति मूल्य आधारित होती है जिससे मानव समाज का आभ्यांतरिक स्वरूप निर्मित होता है। संस्कृति का अध्ययन समग्रता के साथ ही मुकम्मल होता है। मानव व्यवहार के प्रत्येक घटक और आयाम संस्कृति की संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मीडिया संस्कृति के इन संरचनात्मक घटकों और आयामों की गति को प्रभावित करती है। मीडिया संस्कृति आपस में अन्योन्याश्रित होते हैं। मीडिया को संस्कृति का आवश्यक हिस्सा स्वीकार किया जाता है। संस्कृति को आगे बढ़ाने और पुष्ट करने की, प्रचारित और प्रसारित करने की जिम्मेदारी मीडिया की होती है।

वर्तमान समय धीरे धीरे वैश्विक संस्कृति में परिवर्तित होता जा रहा है, जिसमें मीडिया की अहम भूमिका है। संस्कृति लोगों में परंपराओं, मान्यताओ, खान-पान, वेशभूषा, प्रतीक चिन्हों के साथ साथ मिथकीय सूचनाओं के रूप में समाज में स्थापित होती है।

मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग करके अपने लिए वस्तुओं का निर्माण करता है। इसके लिए आवश्यक है कि मूल्यपरक शिक्षा और सांस्कृतिक शिक्षा को एक साथ संबंध करके देखा जाए, जिसको अभी अलग-अलग रूपों में देखा जाता है। प्रत्येक समय के अपने मूल्य होते हैं जो समय सापेक्ष बदलते रहते हैं। भारतीय संस्कृति में अनेक लोगों ने अपने समय के मूल्य को स्थापित किया और संस्कृति को पुष्ट किया। मीडिया प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाने का कार्य करती है। मीडिया संस्कृति को प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त मीडिया अपने व्यवसायिक हितों की पूर्ति के लिए उपभोक्तावाद जैसी नई प्रवृतियों को जन्म भी देता है। इस तरह मीडिया संस्कृति को सकारात्मक और नकारात्मक तरीके से प्रभावित करता है। dkमीडिया संस्कृति का संवाहक है। परंपरागत रूप से यह देखा जाता है कि संस्कृति का विकास और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संचरण मीडिया के माध्यम से ही होता है। इसलिए यह कहना ठीक ही है कि मीडिया और संस्कृति दोनो एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और दोनों एक दोनो से प्रभाव ग्रहण भी करते हैं। प्राचीन काल से अब तक की सामान्य तौर पर की गई समीक्षा से यह पता चलता है कि मीडिया का स्वरूप निरंतर बदला है तो सांस्कृतिक परिवर्तन भी निरंतर नया हुआ है।

की-वर्ड्स *: मूल्य आधारित संस्कृति, भारतीय संस्कृति, संयुक्त परिवार, बहुलतापरक संस्कृति, वैश्विक संस्कृति, संश्लेषनात्मक संस्कृति, मूल्यपरक शिक्षा, सांस्कृतिक शिक्षा, सभ्यता अपसंस्कृति, उत्तरआधुनिक संस्कृति।*

परिचय

मीडिया और संस्कृति का आपसी संबंध इतना अनुगामी है कि इन दोनों के मध्य जो बदलाव नजर आता है, वह एक दूसरे के विकास और परिवर्तन को सूचित करता है। इतिहास में अर्जित मानव सभ्यता की संपूर्ण जीवंतता तथा और उसकी पहचान का मूल्यांकन संस्कृति के द्वारा होती है। यह संस्कृति एक ऐसी प्रक्रिया और धरोहर का प्रतीक है, जिसमें अतीत और वर्तमान स्पष्ट दिखलाई देता है। मूल्य को संस्कृति का संवाहक माना जाता है जिससे मानव समाज का बाहरी और भीतरी स्वरूप निर्मित होता है। अतः यह सही है कि "**संस्कृति को यदि मूल्य मानकर चला जाए तो उसे समष्टिगत मूल्यों के रूप में ही स्वीकृति दी जाएगी**"।[1] अतः यह स्पष्ट दिखता है कि मूल्यों का कंपोजिट स्वरूप संस्कृति के भीतर दिखाई देता है। यह भी सही है कि संस्कृति में जो मनुष्य के जीवन की शक्ति है वह दरअसल " **प्रगतिशील साधनों की विमल विभूति, राष्ट्रीय आदर्शों की गौरवमयी मर्यादा और स्वतंत्रता की वास्तविक प्रतिष्ठा है**"।[2] अतः बहुत ही सहज रूप से यह अनुमान लगाना मुश्किल नहीं कि "संस्कृति मानव-व्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र से संबंध रखती है"।[3]

यदि संस्कृति का अध्ययन किसी एक घटक पर किया जाए तो वह अमूर्त और अधूरा होगा। अतः इसका अध्ययन समग्रता में ही करना उपयुक्त है और यह भी सत्य है कि जीवन से पृथक करके संस्कृति को नहीं देखा जा सकता। मानव जीवन में व्याप्त सभी व्यवहार संस्कृति में अपनी संपूर्ण अर्थवता और चेतना के साथ

---

[1] डॉ देवराज - संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृष्ठ संख्या-159
[2] स्वामी राघवाचार्य - हिंदू संस्कृति, कल्याण विशेषांक, पृष्ठ संख्या 40
[3] जवरीमल्ल पारख - संचार माध्यम और सांस्कृतिक विमर्श, पृष्ठ संख्या 33

Scanned with CamScanner

Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
Volume-13, Issue-3, December-2019
Impact Factor:4.081
www.researchguru.net

गोस्वामी तुलसीदास की नारी संकल्पना

डॉ. तेजनारायण ओझा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, अग्रसेन महाविद्यालय, दि.वि.

रश्मि पांडे
शोध छात्र

सार:

नारी अस्मिता का उभार नए विमर्श की महत्वपूर्ण विशेषता है जहाँ उसे समानता और भागीदारी के लिए विषमतामूलक दृष्टि का विरोध करना पड़ता है। आदिकाल से ही पितृसत्ता ने स्त्री को दोयम दर्जे में जीने के लिए विवश किया है। सामंती परिवेश में स्त्री को मात्र भोग्या और वस्तु के रूप में देखा गया। इतिहास में जर जोरू और जमीन की लड़ाई में स्त्री लगातार तिरस्कृत होती रही मगर शनैः शनैः नवीन चेतना का उदय हुआ, विशेषकर आधुनिककाल में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद विद्यासागर, सावित्रीबाई फुले ने स्त्री प्रस्थिति को बदलने का भरसक प्रयास किया। सवाल ये उठता है कि इस बदलावकारी चेतना के पीछे अतीत में कोई चिह्न मौजूद है या नहीं। भक्तिकाल साहित्य का स्वर्णकाल है, इसलिए इस काल के परीक्षण से इस सवाल का जवाब ढूंढा जा सकता है। इस संदर्भ में अधिकांशतः महाकवि तुलसीदास को उद्धृत करने की चेष्टा रही है। एक तरफ 'ताड़न के अधिकारी' पद्यांश को सामने रखा जाता है तो दूसरी तरफ 'पराधीन सपनेहु सुख नाही' पद्यांश को। आधुनिक चेतना के बरक्स पुरातन चेतना का आकलन करना आसान होता है पर तत्कालीन परिस्थिति और संदर्भों की सम्यक व्याख्या मुश्किल। इस निकष पर तुलसीदास को यदि रखें तो उनकी नारी संकल्पना अपने युग से आगे की सोच पर अवस्थित नजर आती है।

की वर्डस:

नवजागरण, प्रगतिशील चेतना, स्त्री पराधीनता, परंपरागत सोच, संदर्भ का महत्व।

परिचय:

मध्यकाल में नारी की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। आदिकालीन समाज ने नारी की जो छवि तैयार की थी, उसका प्रतिबिंब मध्यकाल में दिख रहा था। मध्यकाल ने भी स्त्री को वस्तु के रूप में देखा। भक्तिकाल को तमाम दृष्टियों से स्वर्ण काल कहा जाता है लेकिन वहां भी स्त्री अपनी परंपरागत छवि से उबर नहीं पाई। भक्तिकाल कई अर्थों में नवंजागरण का काल था क्योंकि इस काल के कवियों ने प्रगतिशील चेतना को अपनी अभिव्यक्ति के केन्द्र में रखा। नारी संबंधी संकल्पना इन भक्त कवियों की दृष्टि में कुछ अलग तो थी लेकिन पितृसत्तात्मक दबाव और परंपरागत सोच से मुक्त नहीं थी।

भक्त कवियों ने अपनी- अपनी सामाजिक व्यवस्था, भक्ति की परंपरा और साधनात्मक तथा सांस्कृतिक संदर्भ के अनुसार अलग-अलग स्त्री-संबंधी संकल्पना प्रस्तुत किया है। कबीर गंभीर सांस्कृतिक चेतना के कवि होते हुए भी स्त्री के प्रति न्याय न कर पाए -

नारी कूंड नरक का, बिरला थामे बाग ।
कोई साधुजन ऊबरे, सब जग मुआ लाग ।। [1]

तो कबीर ने जिस नारी को नरक का कुंड कहा, तुलसी ने भी उसी सोच और संकल्पना के साथ स्त्री का चित्रण किया।

सहज अपावन नार, पति सेवत सुभगति लहै ।
जस गावत श्रुति चार, अजहूं तुलसी हरिहै पिये ।। [2]

इसमें तुलसी ने भी स्त्री को अवगुण की खान स्वीकार किया। कुल मिलाकर स्त्री के संदर्भ में भक्त कवियों की दृष्टि भी कोई बहुत अच्छी नहीं थी ।

स्त्री जहां माया, अविद्या और अध्यास का पर्याय मानी जाती हो वहीं तुलसी ने अपनी परंपरा से अलग हटते हुए

---

[1] मैनेजर पांडेय - भक्ति आंदोलन और सूर का काव्य , पृ.सं. 26,

[2] वही , पृ.सं. 26,

Scanned with CamScanner

ISSN: 2347-4491
UGC Journal No. 49095
IIJIF Impact Factor: 2.982

अयन Ayan

An International Multidisciplinary Peer Reviewed and Refereed Research Journal

Vol. 8 No. 1 January-March 2020

Patron
Prof. I.S. Chouhan
(Ex V.C., Barkatullah University, Bhopal)

Editor-in-Chief
Dr. Bindu Bhushan Upadhyay

Executive Editor
Dr. Vikramaditya Rai

Editors
Dr. Vikash Kumar
Dr. Kumar Varun

❖ ... of Women Population
in Tirhut Division 94-102
Dr. Chandni Chavala

❖ असंगठित क्षेत्र में कार्यरत ग्रामीण महिला श्रमिकों की समस्यायें 103-107
विनोद कुमार

❖ دیہی معاشرہ اور پریم چند: ایک تجزیاتی مطالعہ 108-116
سید کفیل ناظم

❖ रेणु के उपन्यास "मैला आँचल" में सामाजिक चेतना 117-118
डॉ0 हृषि केश पाण्डेय

❖ रहीम की दानशीलता 119-121
डॉ0 अब्दुस सलाम

❖ मध्यकालीन सूफी काव्य में प्रचलित रीति–रिवाज 122-126
डॉ0 वसीम राजा

❖ साहित्य, कला और स्थापत्य (600ई.–900ई.) के क्षेत्र में (500ई.–700ई.) पल्लवों का योगदान 127-131
विनोद रंजन

❖ Revival of Virte ethics 132-138
Dr. Khushbu Fatma

❖ गाँधीजी की बुनियादी शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, बिहार के संदर्भ में 139-143
बिनीता कुमारी

❖ हरिमोहन झाक 'खट्टर ककाक तरंग' में व्यंग्य–बाणक विश्लेषण 144-147
राधा रमण झा

❖ मौलिक अधिकार और सार्वभौम मानवाधिकार : एक तुलनात्मक अध्ययन 148-156
डॉ0 आनंद आजाद

❖ "जनसंख्या नियंत्रण–समस्या नियंत्रण" (एकै साधे सब सधै--) 157-164
डॉ0 कुमुद रंजन झा

❖ Analysis of Delhi Education Policy for Sustainable Future 165-172
Pavneet Kaur

❖ दुर्बोध, अति सरल, अति दूर, अति निकट –शमशेर 173-180
डॉ. राजहंस कुमार

❖ बदलता भारतीय परिदृश्य : हिन्दी भाषा और समाज 181-18[illegible]
डॉ0 श्रुति आनंद

अंक 289 वर्ष 59

भाषा

मार्च–अप्रैल 2020

वैदिक ज्ञान-विज्ञान विशेषांक

ॐ

सत्यमेव जयते

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : 59 अंक : 2 (289)
मार्च–अप्रैल 2020

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाष: 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाष: 011–26105211 / 12
सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, कें. हि. नि. नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

मूल्य :

1.	एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	
2.	वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	(डाक खर्च सहित)
3	पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	
4	दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5	बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादक मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से
आपने लिखा
संपादकीय
आलेख
खंड-I
वेद एवं विज्ञान

1. संस्कृत साहित्य एवं वैदिक भूगर्भविज्ञान	डॉ. नीरज शर्मा	09
2. संस्कृत-हिंदी भाषा-साहित्य में वैदिक-मनोविज्ञान	डॉ. विनोद कुमार	13
3. वैदिक संस्कृत भाषा एवं नीतिविज्ञान	डॉ. विशाल भारद्वाज	18
4. संस्कृत धर्मशास्त्र एवं वैदिक राजधर्म	डॉ. सलोनी	22
5. वैदिक ग्रंथों में न्याय की अवधारणा एवं वर्तमान विधि व्यवस्था	डॉ. प्रशांत मिश्र	28
6. वैदिक संस्कृत : वैज्ञानिक एवं राजनैतिक चिंतन	डॉ. दलबीर सिंह चाहल	33
7. वैदिक साहित्य : भारतीय जिजीविषा का आईना	डॉ. राजहंस कुमार	36
8. योगदर्शन और वेद : एक समग्र विवेचना	अखिलेश आनंद	42
9. वैदिक साहित्य और विविध विषयक नीतियाँ	डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह	50
10. वैदिक ज्योतिष-विज्ञान अथवा आस्था	डॉ. शालिनी राजवंशी	54
11. वैदिक एवं लोकसाहित्य में ज्ञान-विज्ञान	डॉ. अर्चना झा	57
12. वैदिक वाङ्मय एवं पर्यावरण विज्ञान	डॉ. कपिल गौतम	62
13. वर्ण व्यवस्था का वैदिक विज्ञान	डॉ. माधव कृष्ण	70
14. वेदों मे कृषि विज्ञान चिंतन	संकलन (डॉ.) दिनेश चमोला 'शैलेश'	77
15. वैदिक वाङ्मय और तकनीकी : यातायात के प्राचीन वैज्ञानिक साधनों के संदर्भ में	डॉ. (कु.) साधना [illegible]	81
16. वेदों मे कृषि विज्ञान	डॉ. किरन शर्मा	85
17. वैदिक काल और वर्तमान ज्यामितियों का अध्ययन	अवनीश कुमार चतुर्वेदी	89
18. वेद-साहित्य और लोकमंगल का भाव	डॉ. दीनानाथ मिश्र	92
19. वैश्विक ज्ञान-विज्ञान की संपूर्ण क्रियाओं का मूल उत्स : वेद	डॉ. पूरन चंद टंडन	96

Scanned with CamScanner

ISSN 0975-8690 UGC [illegible] Impact Factor [illegible]

THE ETERNITY

Volume XI No. 1-2 Issue-II January-June 2020

Patron

Editor-in-chief

Editors

Associate Editor

[illegible] भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 78-85

डा0 अभय कुमार

❖ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शून्य बजट खेती का औचित्य : एक अध्ययन 86-93

सुनीता कुमारी

❖ मौर्यों द्वारा स्थापित नगरीय प्रशासनिक व्यवस्था वर्णन 94-97

सुबोध कुमार चौरसिया

❖ गाँधी की नारी चेतना

दीना नाथ गुप्ता 98-102

❖ **Tabla: Origins and Development**

Dr. Nawal Kishore Singh 103-107

❖ **Concentration and Accumulation of Nutrients in Safflower of Chhotanagpur Plateau, Jharkhand** 108-111

Nawlesh Kumar

❖ **Globalization impact on India's employment situation** 112-115

Dr. Piyush Kumar Singh

❖ **The Consumer Protection Act, 2019** 116-122

Dr. Rajni Abbi

❖ **Psychological Aspects of Emotional Intelligence of Visually Impaired Students in Higher Education** 123-132

Dr. Seema

❖ जयशंकर प्रसाद के नाटक 'कामना' की प्रासंगिकता 133-139

डॉ. श्रुति आनंद

❖ गीता गैरोला की काव्य संवेदना और 'नूपीलान की मायरा पायबी' 140-144

डॉ. राजहंस कुमार

❖ कबीरदास की भक्ति भावना 145-147

पूजा सिंह

❖ **Voting Behaviour and its Determinants in India: A Theoretical Perspective** 148-162

Shayenaz

❖ **The Indentured System in Fiji: In the Special Reference to Muslim Community** 163-174

गीता गैरोला की काव्य संवेदना और 'नूपीलान की मायरा पायबी'

डॉ. राजहंस कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, महाराजा अग्रसेन महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्याल

'नूपीलान की मायरा पायबी' गीता गैरोला का प्रथम व सर्वाधिक महत्व पूर्ण काव्य संकलन है। इसके पूर्व उनकी छुट पुट काव्य रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आती रही है एक कहानी संकलन 'मल्यों की डार' भी आ चुका है। पर गीता गैरोला मूलतः उत्तराखंड की सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में पहचानी जाती है। इस काव्य-संकलन के बाद निश्चित रूप से उनकी पहचान अपने सक्षम कवि के रूप में बन गयी है क्योंकि यह सिर्फ एक काव्य संकलन नहीं है बल्कि इसमें गीता का सम्पूर्ण काव्य व्यक्तित्व समाहित है। इसलिए बड़ी सुविधा से इस संकलन के माध्यम से गीता जी की काव्य-संवेदना पर विचार किया जा सकता है।

प्रेम, पर्यावरण और स्त्री संघर्ष के इर्द-गिर्द घूमती तकरीबन 11 कविताओं का यह सरस काव्य संकलन गीता के स्थानीय अनुभवों की सांद्रता से भरा है। पहाड़ी सौन्दर्य बोध और स्थानीयता की खुशबू ने संकलन को वर्तमान की रचनात्मक शुष्कता से बचाया है। विचारों से भरी होने के बावजूद ये कवितायें अपने अंतिम रचनात्मक प्रभाव में वैचारिक ऊसरता की ओर ना ले जा कर उर्वरता की ओर ही ले जाती हैं, इसलिए पाठकीय आस्वाद इन कविताओं की सबसे बड़ी खासियत है।

सच पूछें तो संकलन का नाम ही गीता के क्रियाशील काव्य व्यक्तित्व और उनके रचनात्मक काव्य प्रयोजन को इंगित कर देता है। संकलन का नाम 'नूपीलान की मायरा पायबी' हिन्दी पाठकों की भाषायी एकरसता को झटका देकर स्वतः अपनी ओर आकर्षित करता है। किन्तु मणिपुरी भाषा के इन शब्दों का प्रयोग काव्य संकलन के नामकरण हेतु केवल एकरसता भंग करने या ध्यान खींचने के लिए नहीं हुआ है, बल्कि यह गीता के काव्य के केन्द्रीय भाव को अभिव्यक्त करता है। शीर्षक का चयन संकलन की अंतिम कविता के नाम पर किया गया है। दरअसल 'मायरा पायबी' मणिपुर में परंपरा से उन मशाल वाहक अग्रणी महिलाओं को कहते हैं जिन्होंने अपने समय की असंगतियों और स्त्री शोषण के विरुद्ध खड़े हो कर समाज को रोशनी दी है। गीता ने अपने सामाजिक कार्यों का आदर्श इन्हीं स्थानीय महिलाओं को माना है, जो घुप्प अंधेरों में भी मणिपुर की गलियों में मशाल जला कर अपने समाज की स्त्री और सम्पूर्ण समाज को बचाए रखना चाहती है और चाहती ही नहीं बचा भी रखा है। ऐसी मायरा पायबियों में से ही एक इरोम शर्मिला हैं। गीता ने अपना काव्य संकलन इरोम एवं इरोम की स्त्रियों को ही समर्पित किया है। हम सब जानते हैं कि इरोम शर्मिला ने मणिपुर में सैन्य बलों के दुरुपयोग (आफस्पा, AFSPA) वाले कानून

के खिलाफ अहिंसक सत्याग्रह चला रखा था। वर्षों से अन्न त्याग कर सिर्फ आत्मबल के आधार पर दृढ़ विरोध की दीप को जलाए रखना एक मायरा पायबी से ही संभव था। अभी कुछ दिनों पूर्व इरोम द्वारा इस संघर्ष को अगले लोकतांत्रिक चरण में ले जाना, इरोम का विवाह व सक्रिय संसदीय चुनाव में हिस्सेदारी गीता की रचनाशीलता या गीता की कविताई को और भी प्रासंगिक पठनीय और विश्वसनीय बनाती है।

शीर्षक का दूसरा शब्द 'नूपीलान' मणिपुरी भाषा में एकीकृत रूप से चलाये गये दो संघर्षों का नाम है जो आजादी के पूर्व सन 1904 एवं 1939 में संघर्ष शील महिलाओं द्वारा अपने स्थानीय संसाधन लकड़ी और चावल के लिए लड़ा गया था। इस तरह संकलन के शीर्षक, संकलन की अंतिम कविता एवं समर्पण से गीता गैरोला ने स्पष्ट कर दिया है कि स्त्री संघर्ष की सुदीर्घ और स्थानीय परंपरा है और वे स्वयं भी उसी का हिस्सा है इरोम शर्मिला के लिए वे लिखती हैं –

एक दशक से ज्यादा हो गया
तुमने कोई स्वाद नहीं चखा
तुम सब को चखा रही हो मधुर स्वाद
सुना रही हो मदधिम सा राग
दुनिया के सारे स्वाद
जिस दिन तुम्हारी जीभ इन स्वादों को चखेगी
मायरा पायबी का नूपीलान
सारी दुनिया में अंकुरित होगा।

बार बार संघर्षों को अंकुरित करते रहने की चाहत या फिर उन संघर्षों का बीज बेटियों में बो देने की चाहत, गीता की रचनात्मकता पर उनकी वैचारिक क्रियाशीलता और दूर दृष्टि का प्रमाण है। गीता के काव्य में संघर्ष हर स्तर पर है घरों में, संबंधों में, समाज में हर जगह। पर यह संघर्ष स्त्री की रचनात्मकता की पहचान है। अंततः रचनात्मकता ही स्त्री को परिभाषित करती है

वे होती हैं नदी
जिनके तट बांध
रास्ते देते हैं जिंदगी को
वे होती हैं जंगल
अपनी रगों और रेशों से
सांस सांस जीती
वे होती हैं
निःशब्द
खिलती
और बिखरती
उजास की पंखुड़ियां
वे होती हैं
'ओस भिगोती उषा'

अंक 13 भाग-03 अक्टूबर-दिसंबर (2019) ISSN:2348-7771

PEER REVIEWED AND REFEREED JOURNAL

आभ्यंतर

लोक, भाषा, विश्व साहित्य और समकालीन वैचारिकी का मंच

संपादक
कुमार विश्वमंगल पाण्डेय

सांकृतिक राष्ट्रवाद और राजा राममोहन राय की पत्रकारिता

डॉ.आभा शर्मा
हिंदी विभाग
महाराजा अग्रसेन कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

अंग्रेजी में 'पत्रकारिता' को श्रवनतदंसपेउ कहा गया है। पत्रकारिता साहित्य, समाज और संस्कृति से जुड़ा होता है। समाज में घटित घटनाओं को सच्चाई के साथ प्रदर्शित करना ही पत्रकारिता है। भारत में ऐसे कई लोग हुए जिनके लिए पत्रकारिता सामाजिक परिवर्तन का सबसे सशक्त माध्यम थी। उन्होंने पत्रकारिता को ढ़ाल बनाकर बड़े स्तर पर सामाजिक परिवर्तन किया और लोगों की आवाज बने। शंकरदयाल पत्रकारिता के लिए पत्रकारिता व्यवसाय नहीं है "पत्रकारिता एक पेशा नहीं है बल्कि यह तो जनता की सेवा का माध्यम है। पत्रकारों को केवल घटनाओं का विवरण ही पेश नहीं करना चाहिए, आम जनता के सामने उसका विश्लेषण भी करना चाहिए। पत्रकारों पर लोकतांत्रिक परम्पराओं की रक्षा करने और शांति एवं भाई-चारा बनाए रखने की भी जिम्मेदारी आती है।"[1]

राजा राममोहन राय और उनके सहयोगी द्वारकानाथ टैगोर ने अनुभव किया कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सुधार आंदोलनों की अपेक्षित सक्रियता बनाये रखने के लिए स्वतन्त्र पत्रों की प्राथमिक आवश्यकता है इसी दृष्टि से उन्होंने चार पत्रों का प्रकाशन किया। जिनमें बंगाल गजट, संवाद कौमुदी, चन्द्रिका, बंगदूत था जिनकी भाषा बाँग्ला, फारसी, अंग्रेजी तथा हिन्दी थी। पत्र प्रकाशन की मूल दृष्टि को स्पष्ट करते हुए राजा राममोहन राय ने लिखा- "मेरा उद्देश्य मात्र इनता ही है कि जनता के सामने ऐसे बौद्धिक निबंध प्रस्तुत करूँ जो उनके अनुभव को बढ़ाए और सामाजिक प्रगति में सहायक सिद्ध हों। मैं अपनी शक्ति-भर शासकों उनकी प्रजा की परिस्थितियों का सही परिचय देना चाहता हूँ और प्रजा को उनके शासकों-द्वारा स्थापित विधि व्यवस्था से परिचित करना चाहता हूँ ताकि शासक जनता को अधिक से अधिक सुविधा देने का अवसर पा सके और जनता उन उपायों से अवगत हो सकें जिनके द्वारा शासकों से सुरक्षा पायी जा सकें, अपनी उचित माँगे पूरी करायी जा सके।"[2]

इस दमन नीति से क्षुब्ध होकर अर्थात सेन्सर-कर्ताओं ने प्रकाशक के पास एक पत्र भेजा था और कहा था कि यदि किसी आलोचना द्वारा सरकार को जनता की निगाह में गिराया गया, तो वह गैर कानूनी माना जाएगा और यदि किसी आलोचना से स्थानीय जनता के मन में त्रास अथवा सरकार के प्रति सन्देह का बीज बोया गया, तो उस पत्र का प्रकाशन बन्द कर दिया जाएगा। समाचार-पत्रों की स्वाधीनता के लिए, उन्हें अधिकार दिलाने के लिए सन् 1823 में संवाद-पत्रों पर जारी इस निषेधाज्ञा के विरूद्ध 'भारतीय संवाद पत्र' के नाम से राजा राममोहन राय ने हाइकोर्ट में एक दरख्वास्त भेंजी। उन्होंने अपने 'बंगाल गजट' में लिखा कि- "भारत के किसी निवासी के लिए जो सरकारी भवन की देहरी लाँघने में भी समर्थ नहीं हो पाता, पत्र प्रकाशन के लिए सरकारी आज्ञा प्राप्त करना दुस्तर कार्य हो गया है। खुली अदालत में हलफनामा दाखिल करना कम अपमान जनक नहीं, फिर लाइसेंस जब्त किये जाने का खतरा सिर पर सदा झूला करता है। ऐसी दशा में पत्र का प्रकाशन रोक देना ही उचित है।"[3] इस प्रकार ब्रिटिश सरकार की स्वार्थी अनुदारता से भारतीय मानस पीड़ित और कुपित हो गया।

राजा राममोहन राय ने दिसम्बर 1821 में 'सवाद कौमुदी' नामक बाँग्ला साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया। यह राजनीतिक नहीं सामाजिक समस्याओं को लेकर चलने वाली पत्रिका थी जिसका मुख्य उद्देश्य था सती प्रथा जैसी रूढ़ि का खण्डन करना। राजा राममोहन के पत्र 'ब्रम्हैनिकल मैंगजीन' का प्रकाशन ईसाई मिशनरियों के पत्रों का जवाब देने के लिए हुआ था। राजा साहब इसमें शिवप्रसाद शर्मा नाम से लिखते थे। अपने विचारों को अधिक व्यापक बनाने के लिए राजा राममोहन राय ने फारसी में 'मिरात-उल-अखबार' निकाला जिसे अपनी तेजस्विता और प्रसिद्धि के कारण ब्रिटिश सरकार की दमन नीति का शिकार होना पड़ा।

अपने विचारों को व्यापक प्रसार और स्वीकृति देने के लिए ही राजा राममोहन राय ने बंगदूत को हिन्दी, अंग्रेजी, बाँग्ला और फारसी में भी प्रकाशित किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में राममोहन राय की हिन्दी सेवा की चर्चा करते हुए इस पत्र का उल्लेख इस प्रकार किया है। संवत् 1886 में उन्होंने बंगदूत नाम का एक संवाद पत्र भी हिन्दी में निकाला। राममोहन राय की भाषा में एक-आध जगह कुछ बाँगलापन जरूर मिलता है, पर उसका रूप अधिकांश में वही है जो शास्त्रज्ञ विद्वानों के व्यवहार में आता था। उदाहरण के तोर पर- "जो सब ब्राह्मण सांगवेद अध्ययन नहीं करते सो सब

अंक 14 भाग-02 जनवरी-मार्च (2020) ISSN:2348-7771

PEER REVIEWED AND REFEREED JOURNAL

आभ्यंतर

लोक, भाषा, विश्व साहित्य और समकालीन वैचारिकी का मंच

संपादक
कुमार विश्वमंगल पाण्डेय

साहित्य और मीडिया : सामाजिक सरोकार

डॉ.आभा शर्मा
हिंदी विभाग
महाराजा अग्रसेन कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

साहित्य और समाज के सम्बंध को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि- 'साहित्य जनता की चित्त वृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है।"[1] आचार्य शुक्ल का प्रस्तुत कथन साहित्य को समाज के साथ रखकर देखने की एक नयी दृष्टि देता है. इस कथन के माध्यम से हिंदी साहित्य के इतिहास को देखते हुए, संभवत: पहली बार साहित्य के सामाजिक आधार की व्याख्या का प्रयास किया गया. आरंभ से लेकर आज तक साहित्य को विभिन्न प्रकार कीपरिभाषाएँ देते हुए व्याख्यायित किया जाता रहा है.'साहित्य समाज का दर्पण है', साहित्य 'समाज का प्रबिबिंब है', 'साहित्य जनता के हृदय समूह का विकास है', आदिसभी विचार साहित्य और समाज के परस्पर संबंध को स्वीकार करते हैं. साहित्य समाज पर निर्भर है. समाज साहित्य का आधार है. इसलिए समाज में होने वाले प्राय:सभीपरिवर्तन साहित्य में भीदिखायी देते हैं. लेकिन यह भी कहा जाता है कि संबंध एकतरफा नहीं है. साहित्य समाज से केवल प्रभावित ही नहीं होता बल्कि समाज को प्रभावित भी करता है. समाज को कभी-कभी दिशा देने का काम भी करता है. इसी संदर्भ में प्रेमचंद ने कहा था कि- 'साहित्यकार राजनीति के आगे चलने वाली मशाल की तरह है।"[2] यानी साहित्यकार समाज का मार्गदर्शन करने का भी काम करता है. हिंदी साहित्य में इतिहास में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक साहित्य और समाज के संबंधों के इस रूप को स्पष्ट करने वाले अनेक उदाहरण मिल जाएंगे. मध्यकाल में भक्तों ने तत्कालीन समाज में व्याप्त अनेक अंधविश्वासों की ओर लोगों का ध्यान खींचा. सामाजिक जीवन में व्याप्त बुराइयों को उजागर किया तथा बाहयाडंबर और मिथ्याचार पर करारी चोट की. पत्रकारिता की शुरुआत सामाजिक पक्षधरता के लिए आरंभ हुई थी। केवल खबर का प्रकाशन ही पत्रकारिता का उद्देश्य नहीं है- पत्रकारिता खबरों की सौदागरी नहीं है न उसका काम " सत्ता के साथ शयन है। उसका काम जीवन की सच्चाईयों को सामने लाना है। पत्रकारिता अपने विचारों को जनता तक पहुँचाने का उपक्रम है। पत्रकारिता एक अर्थ में अतीत की व्याख्याता, वर्तमान की कहानी और भविष्य की निर्माता है। पत्रकारिता मनुष्य और समाजमजदूर और , मालिक, शासक और शासिक के बीच एक ऐसी कड़ी बन गई है जो दोनों में सामन्जस्य पैदा कर देती है। पत्रकारिता साहित्य की विधि नहीं बल्कि साहित्य, पत्रकारिता के विवेचन का साधन है आज पत्रकारिता में कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, रिपोर्ताज, संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, फीचर आदि सभी शामिल हैं।"[3]

आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समकालीन अन्य महत्वपूर्ण साहित्यकारों ने हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया. उन्होंने साहित्य के माध्यम से स्वाधीनता की भावना की अभिव्यक्ति की, नयी चेतना और जागृति को वाणी दी और इस प्रकार तत्कालीन समाज में तेज़ी से हो रहे नवीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के अनुकूल साहित्य को ढाला. गद्य का विकास हुआ और इस युग में अनेक साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के माध्यम से आम जनता की भावनाओं को अभिव्यक्ति का अवसर मिला और इस प्रकार साहित्य आम जनता के निकट आया. भारतेंदु की प्रतिष्ठित पत्रिका बालाबोधिनी ने उन्हें विश्व स्तर पर स्थापित किया। उन्होंने साहित्य और पत्रकारिता के लिए निर्णायक कार्य किया। उनके लिए यह वाक्य शत-प्रतिशत सच है- "स्वतंत्र भारत की घोषणा करना उस दौर में भारतेन्दु जैसे साहसी एवं निर्भीक पत्रकार के लिए ही संभव था। जिस समय में इस सिद्धांत वाक्य की रचना हुई थी, उस समय सुधार की किसी प्रकार की चर्चा नहीं थी और यह हिंदी प्रदेश घोर निद्रा में निमग्न था। उस समय 'नारि नर सम होई' कहने वाला बड़ा साहसी था। स्वत्व निज भारत गहै' में भावी स्वराज का संकेत था और ऐसे समय में ये विचार प्रकट किये गये थे, जिस समय कांग्रेस का पता भी न था।[4]"आधुनिक काल में साहित्य का विकास बहुत तेजी से हुआ. अनेक साहित्यिक विधाओं का विकास हुआ. कविता के साथ-साथ कहानी, निबंध, समालोचना, उपन्यास, यात्रा वृतांत, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र और नाटक आदि अनेक विधाओं में साहित्य रचना हुई. विभिन्न सामाजिक विषयों पर रचनाकारों ने लेखनी चलायी। साहित्य को युगीन चेतना की सहज अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया. परिमाण और गुणवत्ता दोनों ही दृष्टियों से आधुनिक काल का साहित्य हिंदी साहित्य के इतिहास में विशेष महत्व रखता है. यही कारण है कि साहित्य के इतिहास.ग्रंथों में लगभग आधे भाग में आधुनिककाल का वर्णन किया है. नवीन चेतना के उदय और गद्य के विकास के कारण गद्य की विधओं का विकास हुआ. इसी काल में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी हुआ. इन पत्रिकाओं के प्रकाशन में हिंदी के अनेक लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा. भारतेंदु

---

[1]आचार्य, रामचंद शुक्ल, वाराणसी, नागरी प्रचारिणी सभा, 1978, पृष्ठ-4

[2] प्रेमचंद, साहित्यका उद्देश्य निबंध

[3] https://bnnbharat.com/the-concept-meaning-and/

[4] अंबिका प्रसाद वाजपेई, समाचार पत्रों का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशनबनारस ,, 1953, पृष्ठ-129

अंक 15 भाग-05 अप्रैल-जून (2020) ISSN:2348-7771

PEER REVIEWED AND REFEREED JOURNAL

आभ्यंतर

लोक, भाषा, विश्व साहित्य और समकालीन वैचारिकी का मंच

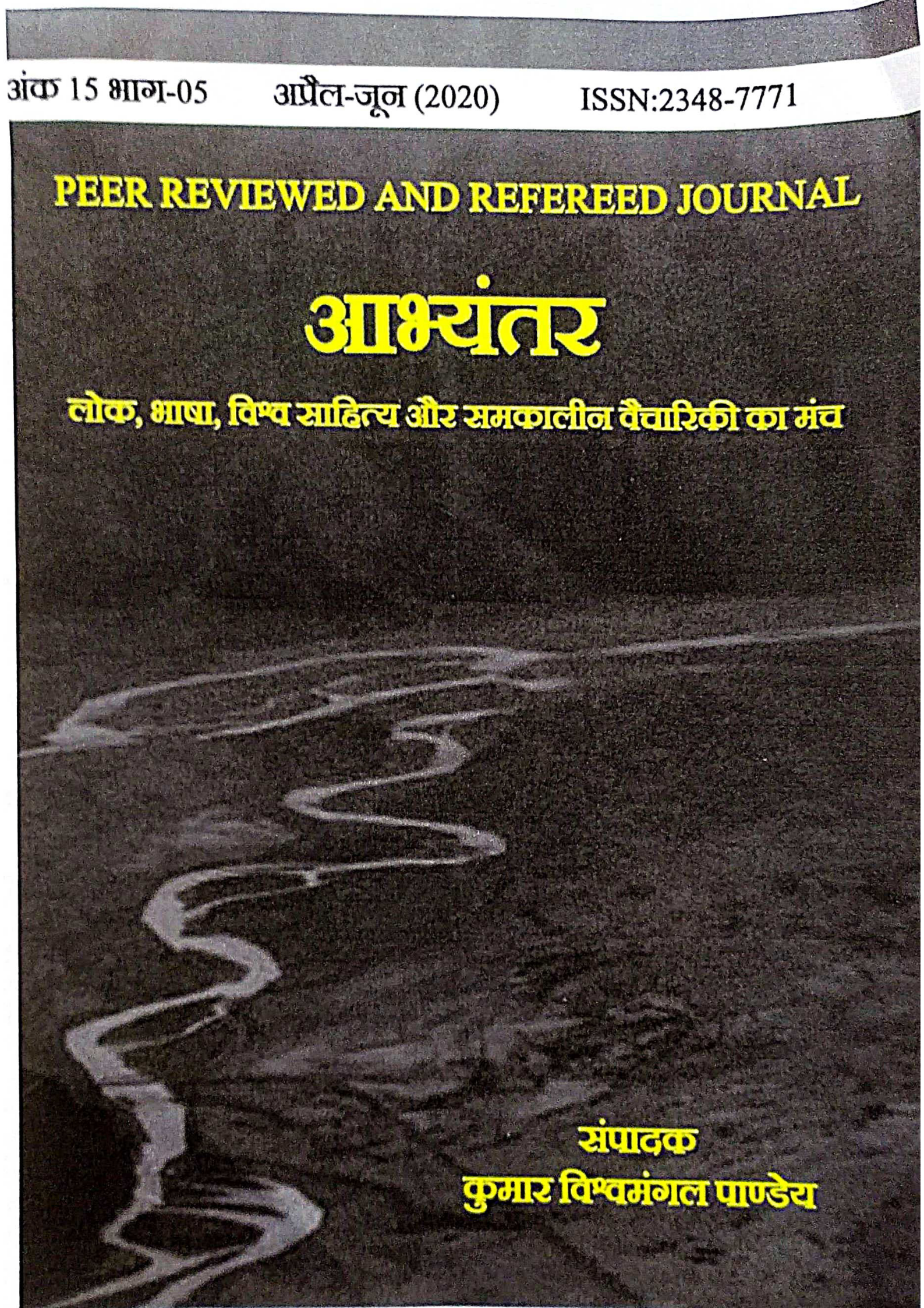

संपादक
कुमार विश्वमंगल पाण्डेय

'साकेत' और संयुक्त परिवार

डॉ. आभा शर्मा
हिंदी विभाग
महाराजा अग्रसेन कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संयुक्त परिवार भारत की सामाजिक पक्षधरता का सबसे बड़ा प्रतीक है। संयुक्त परिवार की व्याख्या प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में भी मिलती है। भारतीय अस्मिता की व्याख्या करने वाले सबसे प्रमाणिक ग्रन्थ 'रामचरित मानस' में संयुक्त परिवार के प्रति आस्था का भाव मिलता है। व्यक्ति की बढ़ती इच्छाओं और आगे बढ़ने की अंधी दौड़ में शामिल होने की प्रवृत्ति ने एकल परिवार की धारणा को मजबूत किया। भारत में 'वसुधैव कुटुंबकम' की गरिमा का ध्यान हमेशा रखा गया। परिवार का प्रत्येक सदस्य भावनात्मक स्तर पर एक दूसरे से जुड़ा होता है। परिवार की महिलाएँ और पुरुष साथ मिलकर परिवार का निर्माण करते हैं। बच्चे के जन्म से ही 'परिवार' शब्द सार्थक होने लगता है- "भारत में ख़ासकर गांवों में परिवार बड़े हैं। लेकिन शहरों में परिवार छोटे हैं। शहरों में बच्चे को मां बाप के साथ छोटे से मकान में रहना पड़ता है। कुछ परिवारों में बच्चा अपने चाचा, चाची, माता, पिता के साथ रहता है। परन्तु इन सभी परिवारों में मां बच्चे के बीच सबसे अधिक नजदीकी रिश्ता है। बच्चे के विकास में भी मां की ही सबसे ज़्यादा बड़ी भूमिका रहती है। बच्चा पैदा होने के बाद से मां के आंचल में रहते हुये भी सीखना शुरू कर देता है। मां की लोरियां उसे सिर्फ़ सुलाती ही नहीं उसके अन्दर प्रारंभ से ही सुनने, ध्यान देने और समझने की क्षमता भी विकसित करती हैं। दूसरी ओर मां-पिता या दादा-दादी, नाना-नानी द्वारा सुनायी गयी कहानियां उसका नैतिक, चारित्रिक विकास करने के साथ ही उसके अंदर मानवीय मूल्यों की नींव भी डालती हैं। इसीलिये मां को पहली शिक्षक भी कहा जाता है। जिसने गुप्त जी के काव्यों का एक बार अध्ययन किया वह अवश्य ही मान लेगा कि उनको गृहस्थ जीवन के चित्र खींचने में अद्वितीय सफलता मिली है। "यह युग राष्ट्रीयता का होने के कारण लोग उनकी राष्ट्रीयता को ले उड़े, अन्यथा उनकी प्रधान विशेषता गृहस्थ जीवन के सुख-दुख की व्यंजना ही है।"[1] मैथिलीशरण गुप्त के विषय में डॉ. नगेन्द्र की यह टिप्पणी उनकी पारिवारिक चेतना को व्यक्त करती है। गुप्त जी में पारिवारिक चेतना का विकास औद्योगिक सभ्यता के दबाव से कृषि-आधारित संयुक्त परिवार का विघटन और उनके स्थान पर व्यक्तिगत परिवार का अस्तित्व में आना प्रमुख कारण रहा। संयुक्त परिवार के विघटन की चिंता गुप्त जी के साथ-साथ प्रेमचन्द तथा मुक्तिबोध जैसे बड़े रचनाकार के काव्यों में देखने को मिलती है। भारतीय मानस 'कुटुम्ब' से 'संयुक्त परिवार' का ही बोध करता रहा है और उसकी आकांक्षा संपूर्ण विश्व को एक संयुक्त-परिवार के रूप में देखने की रही है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' उसका आदर्श रहा है।

साकेत में 'रघु-परिवार' (संयुक्त परिवार) के सुख-दुख का वर्णन है। यह परिवार सूर्यकुल का महान राज परिवार है। परन्तु प्रकृति ने राजा और भिखारी के सुख-दुख में अन्तर नहीं रखा। दोनों के हृदय में एक-सा दर्द है। इस परिवार का जीवन आदर्श संयुक्त परिवार का जीवन है। उसमें जीवन के अनेक सफल चित्र हैं पति-पत्नी हैं, पिता हैं, पुत्र-पुत्रियां हैं, माताएँ हैं, विमाताएं है, देवर-भाभी हैं, सासें, और पुत्र-वधुएँ हैं, स्वामी और सेवक हैं, परन्तु विभिन्न व्यक्तियों से बना हुआ यह परिवार एक संपूर्ण सृष्टि है। यह इसकी क्या सभी सुखी परिवारों की विशेषता है! यथा-

'एक तरू के विविध सुमनों से खिले
पौरजन रहते परस्पर हैं मिले
शिशु न करते हों कलिल क्रीडा जहाँ।
कौन है ऐसा अभागा गृह कहो,
साथ जिसके अश्व गोशाला न हो।"[2]

प्रस्तुत उदाहरण में गुप्त जी ने एक संपूर्ण संयुक्त परिवार का चित्र अंकित किया है। साकेत की रचना से पूर्व गुप्त जी काव्य में उपेक्षित उर्मिला के विषय में रवीन्द्रनाथ तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी से प्रेरित होकर 'उर्मिला' लिख चुके थे। परन्तु उर्मिला को गहरे समझाने के बाद उन्होंने उसमें मौलिक परिवर्तन किया, जिसकी प्रस्तुति है 'साकेत'। इसी मानसिकता को व्यक्त करते हुए 'नन्दकिशोर नवल' ने लिखा है- "उर्मिला के चरित्र में डूबकर उन्होंने (गुप्त जी) यह पाया कि उसका (साकेत) आधार संयुक्त परिवार के आदर्श में उसकी (उर्मिला) निष्ठा है, उसी कारण विवाहोपरान्त ससुराल आते ही 14 वर्षों के लिए उसके प्रति भातृ प्रेम में उससे विमुक्त हो गए।

'साकेत' के चतुर्थ सर्ग में गुप्त जी ने उर्मिला और लक्ष्मण की स्थिति का बेहद सटीक ही नहीं, बल्कि सुन्दर वर्णन भी किया है। इसे कुछ संवादों में देखा जा सकता है:-

उर्मिला वचन स्वयं के प्रति
कहा उर्मिला ने- "हे मन
तू प्रिय-पथ का विघ्न न बन"
सीता वचन उर्मिला के प्रति
"आज भाग्य जो है मेरा
वह भी हुआ न हा! तेरा!"
रामवचन लक्ष्मण के प्रति
'लक्ष्मण, तुम हो तपस्पृही,
मैं वन में भी रहा गृही।
वनवासी हे निर्मोही
हुए वस्तुतः तुम दो ही।"

'गुप्त जी' ने लक्ष्मण तथा उर्मिला के त्याग के मूल में उनकी संयुक्त परिवार के प्रति निष्ठा को माना है और अपने काव्य से उसी की प्रतिष्ठा के लिए एक सर्जनात्मक प्रयास किया है।

उर्मिला का चरित्र गुप्त जी को संयुक्त परिवार तक ले गया और संयुक्त परिवार ने उन्हें कथा का केन्द्र 'अयोध्या-साकेत' को बनाने को विवश किया क्योंकि, दशरथ का परिवार अयोध्या निवासी है तथा कई पत्नियों और कई विवाहित पुत्रों से बना संयुक्त परिवार है। गुप्त जी इस बात को लेकर सावधान थे, नहीं तो जब कथा 'अनिवार्य रूप से वन की ओर स्थानान्तरित होती है, तो वे यह न कहते कि 'यह जंगम-साकेत-देव-मन्दिर चला!' या फिर वे राम के मुँह में अयोध्या के प्रति यह उक्ति न डालते कि 'सूक्ष्म रूप में सभी कही तू साथ!' इस तरह चित्रकूट के संबंध में भी कवि की उक्ति है:-

'सप्रति साकेत-समाज वही है सारा'